तीर्थंकर पार्श्वनाथ का लोकव्यापी व्यक्तित्व और चिन्तन

❑ डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी

भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती थे – तीर्थंकर पार्श्वनाथ ! तीर्थंकर पार्श्वनाथ का व्यक्तित्व और चिन्तन आगमों में यत्र-तत्र मुखरित हुआ है। उन्हीं के व्यक्तित्व एवं चिंतन कणों को शोध-खोज कर ले आये हैं – डॉ. फूलचंदजी जैन 'प्रेमी'।

– सम्पादक

वर्तमान में जैन परम्परा का जो प्राचीन साहित्य उपलब्ध है, उसका सीधा सम्बन्ध चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर से है। इनसे पूर्व नौवीं शती ईसा पूर्व काशी में जन्मे तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी इस श्रमण परम्परा के महान् पुरस्कर्ता थे। उनके विषय में व्यवस्थित रूप में कोई साहित्य वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, किन्तु अनेक प्राचीन ऐतिहासिक प्रामाणिक स्रोतों से ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में मान्य हैं और उनके आदर्शपूर्ण जीवन और धर्म-दर्शन की लोक-व्यापी छवि आज भी सम्पूर्ण भारत तथा इसके सीमावर्ती क्षेत्रों और देशों में विविध रूपों में दिखलाई देती है।

अर्धमागधी प्राकृत साहित्य में उनके लिए "पुरुसादाणीय" अर्थात् लोकनायक श्रेष्ठ पुरुष जैसे अति लोकप्रिय व्यक्तित्व सूचक अनेक सम्मानपूर्ण विशेषणों का उल्लेख मिलता है। वैदिक और बौद्ध धर्मों तथा अहिंसा और आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति पर इनके चिन्तन और प्रभाव की गहरी छाप आज भी अमिट रूप से विद्यमान है। वैदिक, जैन और बौद्ध साहित्य में इनके उल्लेख तथा यहाँ उल्लिखित **व्रात्य, पणि** और **नाग** आदि जातियाँ स्पष्टतः पार्श्वनाथ की अनुयायी थीं। भारत के पूर्वी क्षेत्रों विशेषकर बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि अनेक प्रान्तों के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में लाखों की संख्या में बसने वाली **सराक, सद्गोप, रंगिया** आदि जातियों का सीधा और गहरा सम्बन्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा से है। इन लोगों के दैनिक जीवन-व्यवहार की क्रियाओं और संस्कारों पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ और उनके चिन्तन की गहरी छाप है। सम्पूर्ण सराक जाति तथा अनेक जैनेतर जातियां अपने कुलदेव तथा इष्टदेव के रूप में आज तक मुख्य रूप से इन्हीं को मानती रही हैं। ईसा पूर्व दूसरी-तीसरी शती के सुप्रसिद्ध जैन धर्मानुयायी कलिंग नरेश महाराजा खारवेल भी इन्हीं के प्रमुख अनुयायी थे। अंग, बंग, कलिंग, कुरु, कौशल, काशी, अवन्ती, पुण्ड, मालव, पांचाल, मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्नाटक, कोंकण, मेवाड़, लाट, काश्मीर, कच्छ, वत्स, पल्लव और आमीर आदि तत्कालीन अनेक क्षेत्रों और देशों का उल्लेख आगमों में मिलता है, जिनमें पार्श्व प्रभु ने ससंघ विहार करके जन-जन को हितकारी धर्मोपदेश देकर जागृति पैदा की।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा उनके लोकव्यापी चिन्तन ने लम्बे समय तक धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र को प्रभावित किया है। उनका धर्म व्यवहार की दृष्टि से सहज था। धार्मिक क्षेत्रों में उस समय पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा आदि के लिए हिंसामूलक यज्ञ तथा अज्ञानमूलक तप का बड़ा प्रभाव था, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्होंने पूर्वोक्त क्षेत्रों में विहार करके अहिंसा का समर्थ प्रचार किया, जिसका समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा और अनेक आर्य तथा अनार्य जातियाँ उनके धर्म में दीक्षित हो गईं। राजकुमार अवस्था में कमठ द्वारा काशी के गंगाघाट पर पंचाग्नि तप तथा यज्ञाग्नि में जलते नाग-नागनी का णमोकार मंत्र द्वारा उद्धार की प्रसिद्ध घटना, यह सब उनके द्वारा धार्मिक क्षेत्र में हिंसा और अज्ञान के विरोध और अहिंसा तथा विवेक की स्थापना का प्रतीक है।

जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (भाग १, पृष्ठ ३५६) के अनुसार, नाग तथा द्रविड़ जातियों में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मान्यता असंदिग्ध थी। श्रमण संस्कृति के अनुयायी व्रात्यों में नागजाति सर्वाधिक शक्तिशाली थी। तक्षशिला, उद्यानपुरी, अहिच्छत्र, मथुरा, पद्मावती, कान्तिपुरी, नागपुर आदि इस जाति के प्रसिद्ध केन्द्र थे। भगवान् पार्श्वनाथ नाग जाति के इन केन्द्रों में कई बार पधारे और इनके चिन्तन से प्रभावित होकर सभी इनके अनुयायी बन गये। इस दिशा में गहन अध्ययन और अनुसंधान से आश्चर्यजनक नये तथ्य सामने आ सकते हैं तथा तीर्थंकर पार्श्वनाथ के लोकव्यापी स्वरूप को और अधिक स्पष्ट रूप में उजागर किया जा सकता है।

हमारे देश के हजारों नये और प्राचीन जैनस्मारकों में सर्वाधिक तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्तियों की उपलब्धता भी उनके प्रति गहरा आकर्षण, गहन आस्था और व्यापक प्रभाव का ही परिणाम है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के बाद तथा तीर्थंकर महावीर के समय तक पार्श्वनाथ के अनुयायियों की परम्परा अत्यधिक जीवंत और प्रभावक अवस्था में थी। अर्धमागधी आगमों में **"पासावच्चिज्ज"** अर्थात् पार्श्वापत्यीय तथा **"पासत्थ"** अर्थात् पार्श्वस्थ के रूप उल्लिखित शब्द पार्श्वनाथ के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त किया मिलता है। **"पार्श्वापत्यीय"** शब्द का अर्थ है पार्श्व की परम्परा के अर्थात् उनकी परम्परा के अनुयायी श्रमण और श्रमणोपासक।

अर्धमागधी अंग आगम साहित्य में पंचम अंग आगम भगवती सूत्र, जिसे व्याख्या-प्रज्ञप्ति भी कहा जाता है, में पार्श्वापत्यीय अणगार और गृहस्थ दोनों के विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। इनके सावधानीपूर्वक विश्लेषण से प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर के युग में पार्श्व का दूर-दूर तक व्यापक प्रभाव था तथा में पार्श्वापत्यीय श्रमण एवं उपासक बड़ी संख्या विद्यमान थे। मध्य एवं पूर्वी देशों के व्रात्य क्षत्रिय उनके अनुयायी थे। गंगा का उत्तर एवं दक्षिण भाग तथा अनेक नागवंशी राजतंत्र और गणतंत्र उनके अनुयायी थे। उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन का "केशी-गौतम" संवाद तो बहुत प्रसिद्ध है ही। श्रावस्ती के ये श्रमण केशीकुमार भी पार्श्व की ही परम्परा के साधक थे। सम्पूर्ण राजगृह भी पार्श्व का उपासक था। तीर्थंकर महावीर के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी[२] पार्श्वापत्य परम्परा के श्रमणेपासक थे। जैसा कि कहा भी है –

"समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा वा वि होत्था (आचारांग २, चूलिका ३, सूत्र ४०१) भगवान् महावीर स्वयं कुछ प्रसंगों में पार्श्वापत्यीयों के ज्ञान और प्रश्नोत्तरों की प्रशंसा करते हैं[३]। एक अन्य प्रसंग में वे पार्श्व प्रभु को अरहंत, **पुरिसादाणीय** (पुरुषादानीय – पुरुष श्रेष्ठ या लोकनायक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे सम्मानपूर्ण विशेषणों से सम्बोधित करते हैं[४]।

भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी में ठहरे उन पाँच सौ पार्श्वापत्यीय स्थविरों का उल्लेख विशेष ध्यातव्य है जो पार्श्वापत्यीय श्रमणोपासकों को चातुर्याम धर्म[५] का उपदेश देते हैं तथा श्रमणोपासकों द्वारा पूछे गये संयम, तप तथा इनके फल आदि के विषय में प्रश्नों का समाधान करते हैं। इन प्रश्नोत्तरों का पूरा विवरण जब इन्द्रभूति गौतम को राजगृह में उन श्रावकों द्वारा ज्ञात होता है, तब जाकर भगवान् महावीर को प्रश्नोत्तरों का पूरा विवरण सुनाते हुए पूछते हैं – **भंते, क्या पार्श्वापत्यीय स्थविरों द्वारा किया गया समाधान सही है? क्या वे अभ्यासी और विशिष्ट ज्ञानी हैं?** भगवान् महावीर स्पष्ट उत्तर देते हुए कहते हैं - **अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि भासामि, पण्णवेमि परूवेमि...। सच्चं णं एसमट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए**[६]। अर्थात्, हाँ गौतम ! पार्श्वापत्यीय स्थविरों द्वारा किया गया समाधान सही है। वे सही उत्तर देने में समर्थ हैं। मैं भी इन प्रश्नों का यही उत्तर देता हूँ। आगे गौतम के पूछने पर कि ऐसे श्रमणों की उपासना से क्या लाभ? भगवान् कहते हैं – सत्य सुनने को मिलता है[७]। आगे-आगे उत्तरों के अनुसार प्रश्न भी निरन्तर किये गये।

इन प्रसंगों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि तीर्थंकर महावीर के सामने पार्श्व के धर्म, ज्ञान, आचार और तपश्चरण आदि की समृद्ध परम्परा रही है और भगवान् महावीर उसके प्रशंसक थे।

पालि साहित्य में निर्ग्रन्थों के **"वप्प शाक्य"** नामक श्रावक का उल्लेख मिलता है, जो कि बुद्ध के चूल पिता (पितृव्य) थे[८]। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध का पितृत्व कुल पार्श्वापत्यीय था। कुछ उल्लेखों से यह भी सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्ध आरम्भ में भगवान् पार्श्व की निर्ग्रन्थ परम्परा में दीक्षित हुए थे। किन्तु, बाद में उन्होंने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाया।

भगवान् बुद्ध के एक जीवन-प्रसंग से यह पता चलता है कि वे अपनी साधनावस्था में पार्श्व-परम्परा से अवश्य सम्बद्ध रहे हैं। अपने प्रमुख शिष्य सारिपुत्र से वे कहते हैं – **"सारिपुत्र, बोधि-प्राप्ति से पूर्व मैं दाढ़ी, मूंछों का लूंचन करता था। मैं खड़ा रहकर तपस्या करता था। उकडू बैठकर तपस्या करता था। मैं नंगा रहता था। लौकिक आचारों का पालन नहीं करता था। हथेली पर भिक्षा लेकर खाता था।.... बैठे हुए स्थान पर आकर दिये हुए अन्न को, अपने लिये तैयार किए हुए अन्न को और निमंत्रण को भी स्वीकार नहीं करता था। गर्भिणी और स्तनपान कराने वाली स्त्री से भिक्षा नहीं लेता था**[१०]। यह समस्त आचार जैन साधुओं का है। इससे प्रतीत होता है कि गौतम बुद्ध पार्श्वनाथ-परम्परा के किसी श्रमण-संघ में दीक्षित हुए और वहाँ से उन्होंने बहुत कुछ सद्ज्ञान प्राप्त किया।

देवसेनाचार्य (८वीं शती) ने भी गौतम बुद्ध के द्वारा प्रारम्भ में जैन दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख करते हुए कहा है – जैन श्रमण पिहिताश्रव ने सरयू नदी के तट पर पलाश नामक ग्राम में श्री पार्श्वनाथ के संघ में उन्हें दीक्षा दी और उनका नाम मुनि बुद्धकीर्ति रखा। कुछ समय बाद वे मत्स्य-मांस खाने लगे और रक्त वस्त्र पहनकर अपने नवीन धर्म का उपदेश करने लगे[११]। यह उल्लेख अपने आप में बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व नहीं रखता, फिर

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

भी यथा प्रकार के समुल्लेखों के साथ अपना एक स्थान अवश्य बना लेता है[१२]।

पालि दीघनिकाय के सामण्णफल सुत्त में मक्खलि गोशालक आदि जिन छह तीर्थंकरों के मतों का प्रतिपादन है, उनमें निग्गण्ठनातपुत्त के नाम से जिन चातुर्याम संवर अर्थात् **सव्ववारिवारित्तो, सव्ववारियुतो, सव्ववारिधुतो** और **सव्ववारिफुटो** की चर्चा है, वैसी किसी भी जैनग्रन्थों में नहीं मिलती। स्थानांग, भगवती उत्तराध्ययन आदि सूत्र ग्रन्थों में तो पार्श्व प्रभु के सर्व प्राणातिपात विरति, सर्वमृषावाद विरति, सर्व अदत्तादान विरति और सर्व बहिर्धादान विरति रूप चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन मिलता है। जबकि दिगम्बर परम्परा के अनुसार सभी तीर्थंकरों ने पाँच महाव्रत रूप आचार धर्म का प्रतिपादन समान रूप से किया है। यह भी ध्यातव्य है कि अर्धमागधी परम्परानुसार चातुर्याम का उपदेश पार्श्वनाथ ने दिया था, न कि ज्ञातपुत्र महावीर ने। किन्तु इस उल्लेख से यह अवश्य सिद्ध होता है कि भगवान् बुद्ध के सामने भी पार्श्वनाथ के चिन्तन का काफी व्यापक प्रभाव था और पार्श्वापत्यियों से भी उनका अच्छा परिचय था।

कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है कि यज्ञ-यागादि प्रधान वेदों के बाद उपनिषदों में आध्यात्मिक चिन्तन की प्रधानता में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चिन्तन का भी काफी प्रभाव पड़ा है। इस तरह वैदिक परम्परा के लिए तीर्थंकर पार्श्वनाथ का आध्यात्मिक रूप में बहुमूल्य योगदान कहा जा सकता है।

इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रभावक व्यक्तित्व और चिन्तन ऐसा लोकव्यापी था कि कोई भी एक बार इनके या इनकी परम्परा के परिपार्श्व में आने पर उनका प्रबल अनुयायी बन जाता था। उनके विराट् व्यक्तित्व का विवेचन कुछ शब्दों या पृष्ठों में करना असम्भव है, फिर भी विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन और सीमित शक्ति से उन्हें जितना जान पाया, यहाँ श्रद्धा विनत प्रस्तुत किया है ताकि हम सभी उनके प्रभाव को जानकर उन्हें जानने-समझने के लिए आगे प्रयत्नशील हो सकें।

— रीडर एवं अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

✤ ✤ ✤

सन्दर्भ

०१. क. पार्श्वापत्यानां-पार्श्वजिन शिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः — भगवती टीका १/९
ख. पार्श्वापत्यस्य-पार्श्वस्वामि शिष्यस्य अपत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः - सूत्र ०२/७

०२. वेसलिए पुरीरा सिरियासजिणे ससासणसणहो।
हेहयकुलसंभूओ चेइगनामा निवो आसि।। उपदेशमाला गाथा ९२.

०३. भगवई २/५, पैरा ११०, पृष्ठ. १०८.

०४. पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं सासए लोए बुइए अणादीए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले-भगवई २/५/९/२५५ पृष्ठ. २३१

०५. भगवई २/५/९८ पृष्ठ. १०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०६. वही २/५/११० पृष्ठ. १०८
०७. वही २/५/११० पृष्ठ. १०६
०८. पालि अंगुत्तर निकाय चतुष्कनिपात महावग्गो वप्पसुत्त ४-२०-५
०६. क. मज्झिमनिकाय महासिंहनाद सुत्त १/१/२, दीघनिकाय पासादिकसुत्त
ख. पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म पृष्ठ. २४
१०. मज्झिमनिकाय महासिंहनाद सुत्त १/१/२, धर्मानन्द कौशाम्बी भ.बुद्ध पृष्ठ.६८-६६
११. सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थी।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो वड्ढकित्तिमुणी।।... रत्तबरं धरित्ता पवट्टिय तेण एयतं ।। दर्शनसार श्लोक ६-८
१२. आगम और त्रिपिटकः एक अनुशीलन पृष्ठ. २

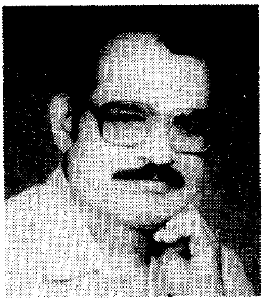

❑ जैनदर्शन, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति के संवर्द्धन, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में सदैव तत्पर डॉ. श्री फूलचन्दजी जैन 'प्रेमी' का जन्म १२ जुलाई १६४८ को दलपतपुर ग्राम (सागर - म.प्र.) में हुआ। प्रारंभिक शिक्षोपरांत आपने जैनधर्म विशारद, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्याचार्य, एम.ए. एवं शास्त्राचार्य की परीक्षाएं दी। "मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी को कई पुरस्कारों से आज दिन तक सम्मानित किया गया है।

जैन जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. प्रेमी ने अनेक कृतियों का लेखन-संपादन करके जैन साहित्य में श्री वृद्धि की है। अनेक शोधपरक निबंध जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित! राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में जैनदर्शन विषयक व्याख्यान ! 'जैन रत्न' की उपाधि से विभूषित डॉ. प्रेमी जी सरलमना एवं सहृदयी सज्जन है।

— सम्पादक

कर्म क्या है ? मन-वाणी और शरीर द्वारा शुभ-अशुभ, स्पन्दना का होना तथा क्रोधादि संक्लेश भावों से कार्य करना उससे आत्मप्रदेशों पर कर्माणुओं का संग्रह होना कर्म है। उसका कालान्तर में जागृत होना कर्मफल का भोग है। किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता वह फलवान होता है। आदमी के चाहने न चाहने, मानने न मानने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

✤ ✤ ✤

जब अपने पर ही भरोसा नहीं है तो फिर परमात्मा पर भरोसा कैसे आयेगा? फिर संभ्रान्त, दिशा-विमूढ़ की भाँति इतस्ततः संसार में भटकते रहोगे। इसलिए आत्मा पर विश्वास होना अति आवश्यक है। आत्मा का अस्तित्व है तो वहाँ पर लोक का अस्तित्व है, लोक है तो वहाँ कर्म का अस्तित्व है, कर्म है वहाँ क्रिया भी है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org